अंधकार से प्रकाश की ओर

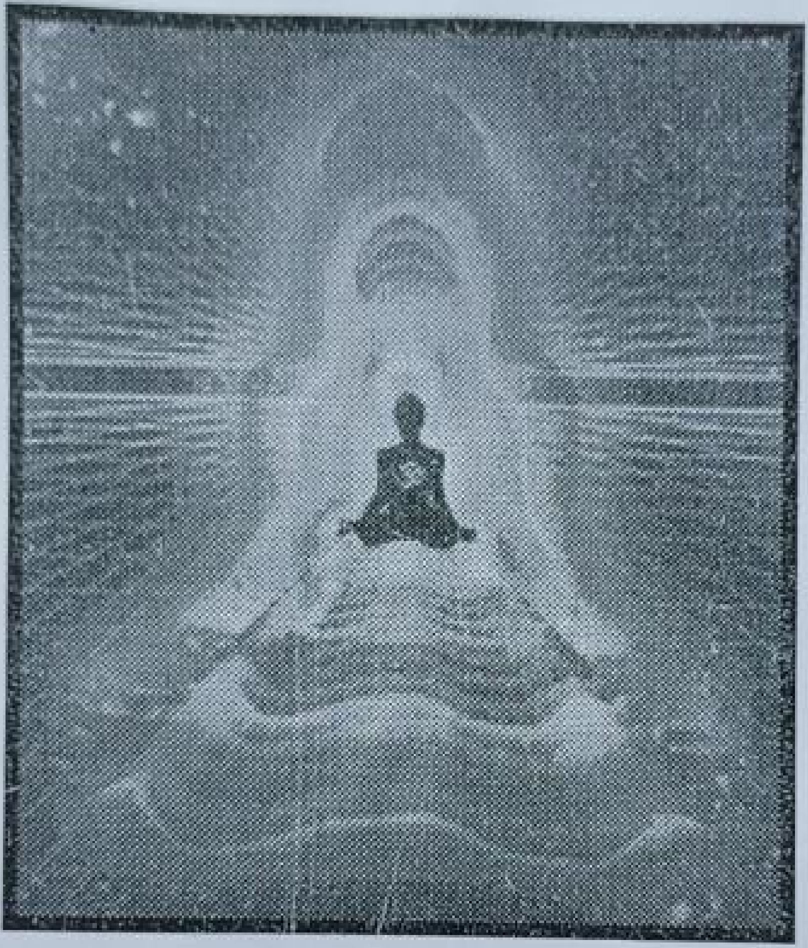

लेखक : **संजय जैन** (गुरुजी)

स्पंदन पारमार्थिक शिक्षा एवं सामाजिक उन्नयन समिति (रजि.)
उज्जैन (म.प्र.)

अंधकार से प्रकाश की ओर

कभी भी कोई परेशानी या दिक्कत अचानक नहीं आती है। उसका बीजारोपण पहले से ही निर्धारित होता है एवं इसका आभास शक्ति द्वारा प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रुप से पहले से ही करा दिया जाता है। सिर्फ जरुरत है ईमानदारी से आत्म निरीक्षण की। आद्यशक्ति स्वरुप की कृपा पाने हेतु आत्मा की शुद्धि की प्रक्रिया करना होती है। ये प्रक्रिया आत्मा को परमात्मा से विलय की दूरी को पाटने में मददगार होती है। इस आत्मशुद्धि की प्रक्रिया के अंतर्गत एक अवस्था ऐसी भी आती है जबकि साधक का मन, इस संसार और अलौकिक संसार के मध्य की विभाजन ईकाई की परिधि के दायरे में होता है।

वस्तुतः ये ही साधनामार्ग की सबसे कठिनतम अवस्था होती है जिसमें कि व्यक्ति का मानस, तो इस संसार की माया के स्पर्श के अनुभूति के अहसास में हिलोरे ले रहा होता है वहीं दूसरी ओर उसका आत्म स्वरुप परम आत्मा से विलयित होने के लिये व्याकुल हो रहा होता है।

ये अत्यंत नाजुक अवस्था होती है और अक्सर कमजोर संकल्प शक्ति वाले साधक, उद्देश्यहीन साधक, गुरु के अनुभव के मार्गदर्शन से रहित शिष्य, पंच विकार (काम, क्रोध, लोभ, मोह, द्वेष) युक्त साधक इस समय विचलित हो जाते हैं और इस समय उनके द्वारा की गई छोटी सी भूल भी उन्हें वर्षों, जन्मों, मीलों दूर पीछे धकेल देती है और फिर इन साधकों में से चन्द बिरले साधक ही पुनः अपनी इस अवस्था को प्राप्त करके आगे का मार्ग प्रशस्त कर पाते है।

इस समय साधक की मानसिक अवस्था अर्धमुर्छित समान हो जाती है वो न तो इस संसार में पूरी तरह रम पाता है और ना ही अलौकिक अनुभूति का रसास्वादन कर पाता है। अर्थात ना घर का रह पाता है और ना घाट का। ये ही वजह है कि अधिकांश साधक परम सत्य की खोज के मार्ग में ही असमानता के घने अंधेरे में खोकर अपना जीवन चक्र व्यर्थ ही बरबाद कर लेते हैं । उनमें से कई उस

अवस्था तक पहुँच जाते हैं, जहाँ से वे परम शक्ति के दिव्य प्रकाश को देख तो लेते हैं परंतु उन दिव्य रश्मियों को अपने अंदर आत्मसात नहीं कर पाते हैं ना ही उस दिव्यता के प्रतिभुत आचरण कर पाने में अपने आप को समर्थ पाते हैं ।

फिर धीरे–धीरे उनके द्वारा अर्जित पुण्यों के उद्‌भव का क्षण नजदीक आता जाता है तद्‌नानुसार वह साधक दिव्य रश्मियों की चकाचौंध को अपने नजदीक और नजदीक बढ़ते देखता है फिर एक क्षण ऐसा भी आता है जबकि उसका समूचा मानव–जन्म मानों कोटिशः सार्थक होता प्रतीत होता है ।

ये क्षण वो होता है जब साधक की आत्मा, परमात्मा के दिव्य अद्‌भुत अकल्पनीय सतरंगी सैकडों सूर्य के समान प्रकाशमान आवृत्ति वाले प्रकाशपुंज में अतंर्निहीत हो जाती है । सारा अज्ञान उस क्षण विलुप्त हो जाता है । साधक की शारीरिक उपस्थिति नगण्य हो ज़ाती है और शरीर ऐसा हल्का हो जाता है मानों स्थूलता का मात्र एक़ कतरा हो एवं अपनी इस स्थूलता से मुक्ति हेतु एक निर्दोष –मासूम–बच्चे के समान मचल उठता है ।

ये वो अवस्था है जहाँ से साधक की जिंदगी एक नये आयामों के परिमापन हेतु नये सिरे से शुरू होती है ।

उसके जीने के उद्देश्य का स्वरूप ही बदल जाता है । फिर शुरूआत होती है एक नये सफर की, नये संकल्पों की, नये प्रकल्पों की, नई जिम्मेदारियों की, ज्ञान के नये आयाम की क्योंकि साधक की भूमिका इस दौरान एक मध्यस्थ समान हो जाती है । जिसको की लौकिक एवं परलौकिक दोनों अनुभूति होती है और इन्हीं दोनों अनुभूतियों के साथ उसको सामंजस्य बिठाकर इस सांसारिक जीवन में कर्मबंधन का प्रदत्त चक्र व्यतीत करना होता है क्योंकि इस समय तक भी वो इतना सक्षम नहीं हो पाता है कि अपने भाग्य या कर्म से परे आचरण कर सके और इन्ही सांसारिक चर्या में रहकर उसके अपने कर्मबंध से पुण्य का परिमार्जन निरंतर विस्तारित करना होता है।

इस प्रक्रिया में महीनों, वर्षों एवं जन्मों तक का समय भी लग

सकता है। साधक की संकल्प शक्ति ईष्ट के प्रति समर्पण भाव इस समयावधि को कम कर सकते है।

एक अन्य मार्ग गुरु प्रदत्त भी हो सकता है। ....

और एक पथ ईष्ट द्वारा प्रदत्त अलौकिक स्वयं ज्ञान एवं अनुभूति द्वारा भी होता है जिसमें साधन स्वयं साधक के पास पहुँचकर उसको तराशकर कीमती बना देते है, परंतु ऐसा बिरले ही होता है।

वो भी जन्म जन्मांतर के योग संयोग मिलकर ऐसा दुर्लभ प्रसंग बनाते है परमशक्ति की परम अनुकंपा से। इस अलौकिक अनुभूति के उपरांत एक अनंत विस्तारित आकाश जैसी स्थिरता साधक के आत्मस्वरुप को परिलक्षित होती है।

उसका चेतन स्वरुप अब ज्ञान–अज्ञान, लौकिक–अलौकिक, भेद–विभेद, काया–परकाया, सूक्ष्म–स्थूल, अहंकार–प्रकाश, कृत्रिमता–प्रगटता, कल्पना–यथार्थता इत्यादि के विभाजन के दायरे की सूक्ष्म परिधी के दायरे के भंवरजाल से निर्लिप्तता महसूस करने की अवस्था में प्रागट्य हो जाना आरंभ कर देता है।

शुरुआती क्षणों व अवसरों में ये प्रागट्यता का स्वरुप एक सूक्ष्म दायरे में अपने प्रभाव स्वरुप को प्रगट करता है। फिर शनैः शनैः साधक की संकल्पशक्ति के तद्नास्वरूप इसका दायरा विस्तारित होना आरंभ होता है । फिर ज्यों–त्यों परब्रम्हा स्वरूप की समीपता की दिव्यता से साधक का ज्ञानस्वरूप परिष्कृत होता जाता है उसके आत्म स्वरूप की चेतनता के आभामंडल की चमक, बढ़ती जाती है, जो की स्वयं उसका ज्ञान तप, ध्यान तप, और साधना तप का मार्ग प्रशस्त करती जाती है ।

इन समस्त प्रक्रियाओं के साथ–साथ साधक को प्रतिदिन, अनुभव और अहसास के नये–नये सांसारिक मायावी कभी–कभी चमत्कारी आयामों से रूबरू कराया जाता है। वस्तुतः ये साधक के प्रशिक्षण की प्रयोगशाला समान होता है । जिसमें सभी प्रकार की परिस्थितियों से कुछ ना कुछ अंश लेकर उसको परिष्कृत स्वरूप प्रदान किया जाता है । फिर साधक की चेतनता की अनंत यात्रा की

शुरूआत होती है । जिसमें की उसके कर्मबंध, धर्मबंध, संस्कारबंध, संकल्पबंध, निश्चयबंध की स्थिरता एवं दृढ़ता के आधार पर परम ज्योति स्वरूप में विलयता के मार्ग की अनूकूलतायें प्रदान की जाती है जिसमें साधक को अपने स्वविवेक का सफलतापूर्वक उपयोग करते हुये उन परिस्थितियों को अपने आत्म कल्याण हेतु माध्यम बनाना होता है एवं ये प्रक्रियाऐं भिन्न–भिन्न स्वरूप का आवरण लपेटे हुये साधक के समक्ष गुजारी जाती रहती है और ये तब तक निरंतर चलती रहती है जब तक की साधक की आत्मा, पूर्णरूपेण निर्मल, ईमानदार होकर शरीरबंध से मुक्त होकर परम–आत्मा की असीम कृपा पाने की कसौटी पर खरी उतर नहीं जाती है । फिर उस परम शिव तत्व की कृपा से साधक की समस्त ज्ञानेन्द्रियों में प्राण वायु की चेतना, स्पदंन स्वरुप में अवतरित होना आरंभ कर देती है। जो कि उसके समस्त चक्रों पर सूक्ष्मता से हौले–हौले दस्तक देना आरंभ कर देती है।

फिर इसके पश्चात् शुरु होती है कुण्डलिनी जागरण की प्रक्रिया जिसकी अंतिम परिणिति साधक के आत्म तत्व के शिव–स्वरुप में संविलय के रुप में पूर्णित होती है। साधक का संपूर्ण स्वरुप शिवमय होने लगता है।

कुण्डलिनी जागरण की प्रक्रिया कुल 7 चक्रो में विभाजन स्वरुप लिये होती है। प्रत्येक चक्र अपने आप में एक–एक विशिष्टता का समावेश अपने भीतर किये रहता है। इन चक्रो की क्रमानुसार जागृत होने की प्रक्रिया, योग–साधना मार्ग की सर्वोच्च प्रक्रिया होती है। जैसे–जैसे साधक का अंतर्मन अपने आत्म प्रवचन की असीम गहराइयो में डूबना आरंभ करता जाता है। वैसे–वैसे चक्रो का भेदन आरंभ हो जाता हैं। इस चक्र भेदन की प्रक्रिया की गहराई के परिणामस्वरुप साधक के आत्म स्वरुप में निखार आना शुरु हो जाता है।

उसके संपूर्ण शरीर के कण–कण में अनंत ऊर्जा युक्त प्राणवायु की संचार की तीव्रता बढती जाती है और इससे उत्पन्न ओजस्वी ऊर्जा साधक के तन और मन के आंतरिक विकारो को

समूल नष्ट करना आरंभ कर देती है। प्रतिक्रियास्वरुप साधक का मन भी कभी–कभी विचलित होना आरंभ कर देता है।

इस समय उसको सर्वाधिक जरुरत होती है आत्मसंयम की, आत्म नियंत्रण की, दृढ ईच्छाशक्ति और अटूट संकल्प की ताकि भावनाओ के अनचाहे उद्वेग और तूफानो से स्वयं को अप्रभावित रख सकें। "ईष्ट कृपा" और "योग्य पथ प्रदर्शक" का मार्गदर्शन उसको इस समय मददगार हो सकते है। फिर इस संसार के मायाजाल के डूबते, उतरते, निकलते, उलझते, सुलझते इत्यादि अनेक प्रकार के आयामो की संरचनाओं में विचरण करते–कराते चक्रों के जागृत स्वरुप की अनुभूति की यात्रा अपने मंजिल की ओर क्रमशः बढती जाती है।

इस प्रक्रिया में साधक की तीनों नाडियो की भूमिका अलग–अलग होती है। ये नाड़ियाँ है – ईड़ा पिंगला और सबसे मुख्य है सुषुम्ना नाड़ी।

ईडा और पिंगला नाड़ी तो सहायक भूमिका अदा करती है । परंतु सबसे मुख्यतः कार्यकारी भूमिका सुषुम्ना नाड़ी के माध्यम से प्रारंभ होती है । समस्त सृष्टि को जिस जैविक ऊर्जा द्वारा संचालित किया जाता है उस ऊर्जा का प्रभाव इस सुषुम्ना नाड़ी के माध्यम द्वारा ही साधक के शरीर के समस्त शक्ति बिंदुओं तक पहुँचाया जाता है । ये शक्ति बिंदु पूर्णरूप से सक्रिय होकर साधक की समस्त ज्ञानेन्द्रियों की चेतना को संपूर्ण रूप से जागृत कर देते है । साधना के इस पड़ाव पर आकर साधक की अवस्था में परिवर्तन आने लगता है ।

अब वो चेतन स्वरूप में इस संसार की समस्त चर्याओं को देखता है, महसूस करता है परंतु चूँकि अब उसके आत्म स्वरूप की चेतना जागृत हो चुकी होती है । इसलिये अब उसका जीवनयापन, जीवन चर्या, संयमित, मर्यादित, संतुलित, समभाव वाला होने लगता है । सांसारिक परिस्थितियों के विचलन की तीव्रता का असर अब शनैःशनैः उसके ऊपर कम प्रभावी होता है और प्रत्येक सांसारिक बंधन से मुक्ति उसको उसके साधना मार्ग में एक नई मजबूती प्रदान

करती जाती है । इस अवस्था में उसको परम शक्ति का एक अंश भी अपने भीतर महसूस होने लगता है । जो कि निरंतर उसको प्रेरित करता रहता है । अपने लक्ष्य के प्राप्ति हेतु । इस प्रक्रिया के दौरान साधक को स्वयं की आंतरिक ऊर्जाओं और शक्ति बिंदुओं से परिचय कराया जाता है ताकि वह अपने आप का परिचय पूर्ण स्वरूप में जान सके, उसको उसके लक्ष्य का अहसास दिलाया जाता है और इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु आवश्यक प्रक्रियाओं से रूबरू कराया जाता है । आम बोलचाल की भाषा में इसको आत्म–साक्षात्कार कहा जाता है। इसके अंतर्गत साधक की वो स्थिति आ जाती है, जहाँ से वो दृष्टि–बोध, ज्ञान–बोध और शरीर–बोध तीनों के बीच स्पष्ट भेद करने में किसी भी प्रकार की उलझन या शंका नहीं होती है । उसका नजरिया शरीर और आत्मा के परस्पर संबंधों की स्पष्ट व्याख्या करनें में सक्षम हो जाता है । उसके मन में –

1. मैं कौन हूँ ?
2. मेरा लक्ष्य क्या है ?
3. मेरा कर्तव्य क्या है ?
4. मेरी चर्या क्या है ?

इत्यादि प्रश्न निरंतर अवतरित होते रहते हैं । और इन्हीं प्रश्नों के उत्तर की तलाश में.....उसका मन बेचैन और अति व्याकुल हो जाता है । उसके मन में प्रतिक्षण एक नई कसक उत्पन्न होती जाती है और फिर उसके अंतर्मन की तड़प का दायरा जब बिना रूके निरंतर विस्तारित होने लग जाता है तो साधक की दैनिक प्रवृत्तियाँ तेजी से रूपांतरित होना आरंभ कर देती है । इसमें साधक को अपने भीतर बहुत सारे बदलाव महसुस होने लगते हैं जिनकों वो समझ नहीं पाता है । ये बदलाव विस्मयकारी भी होते हैं एवं कुछ बदलाव अकल्पनीय होते हैं । कुछ बदलाव की वजह से साधक को अपने अंदर असीमित अलौकिक ऊर्जा की मौजूदगी स्पष्टतया महसूस होने लगती है एवं उसको अपना शरीर नश्वर लगने लगता है । उसकी आत्मा मानों शरीररूपी पिंजरे को छोड़कर बाहर आने को मचल उठती है और फिर साधक को निरंतर उत्तेजित करती रहती

अपने परम लक्ष्य की प्राप्ति हेतु । बस यहीं से फिर एक नई शुरूआत होती है –

आत्मा के 'परम आत्मा' में विलय के सफर की

एक सूक्ष्म प्रकाश पुंज के अनंत विस्तारित अद्भूत दिव्य प्रकाश में मिलन की

एक सत्य के परम सत्य में विलीन होने की ।

जड़ता की चेतनता में संविलय की ।

अज्ञानता की ज्ञानस्वरूप में परिवर्तित की ।

मानव जन्म की सार्थकता की परिणीति की ।

ये शुरूआत साधक के लिये इस अखिल ब्रम्हाण्ड रूपी सृष्टि में प्रवेश हेतु एक विधिवत, क्रमबंद्ध प्रक्रियाओं की सुनियोजित श्रंखला तैयार करती है जो कि विभिन्न चक्रों की सहायता से उसको परम लक्ष्य की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करती जाती है और इस मार्ग के मध्य में आने वाले भाँति–भाँति प्रकार के अनुभवों के आयाम से रूबरू भी कराती जाती है ।

वस्तुतः ये ब्रम्हयोग की अवस्था होती है और इस अवस्था तक पहुँचने वाला साधक ब्रम्हयोगी की अवस्था को प्राप्त कर लेता है । इस समय सांसारिक चर्याओं से उसका मन उच्चाटित होने लगता है और वह सुदूर अंतरिक्ष की अनंत और असीम संरचनाओं के मध्य विचरण करने लगता है । धीरे–धीरे वो परमशक्ति के दायरे के और निकट आने लगता है और उस परम ऊर्जा के स्पर्श के सानिध्य से उसका बचा हुआ अज्ञानरूपी अंधियारा नष्ट होने लग जाता है और साधक के ज्ञानचक्षु पूर्णतः खुलने लगते हैं और उनकी दृश्यता की आवृत्ति बढ़ने लग जाती है। ताकि वो उस अद्भूत अकल्पनीय और अविस्मरणीय आभायुक्त आभामंडल की दिव्यता के प्रकाशपुंज की चमक, जो कि हजारो सूर्य की रोशनी अपने आप में समेटे होती है, के प्रभाव को देख सकने में सक्षम हो।

इस प्रक्रिया से साधक की साधना अब उस मुकाम तक आ पहुँचती है। जहाँ से साधक की आत्मा अब शरीर छोंडकर लोक से परलोक की यात्रा करने में सक्षम हो जाती है। उसकी आत्मा के

ऊपर सांसारिक शरीर का नश्वर बंधन अब बैमानी हो जाता है। इस सृष्टि के विस्मयकारी रहस्य अब साधक के समझ में थोडे–थोडे आने लग जाते है। वो लौकिक और परलौकिक क्रियाओ में आनंद की अनुभूति महसूस करने लगता है। उसकी मानसिक क्षमता का भी विस्तार अब तक हो चुका होता है। सहनशीलता भी विस्तारित हो जाती है । कल्पनाओं की उड़ान यथार्थ स्वरूप में दृष्टिगत होने लगती है ।आँख बंद करने पर भाँति–भाँति दृश्यचित्र सामने आते हैं और फिर दृढ़ इच्छाशक्ति से साधक अपने मन–मस्तिष्क को इच्छित वस्तु या स्थान तक ले जाने में सक्षम हो जाता है ।

फिर अवस्था आती है परलौकिक गमन की । इस अवस्था में साधक का सूक्ष्म मन (Sub Consious mind) शरीर को छोड़कर लौकिक–अलौकिक–परलौकिक परिभ्रमण करने लगता है । साधक को भी अब शरीर और आत्मा का भेद अब स्पष्ट स्वरूप में महसूस होने लग जाता है । साधक का जीव इन यौगिक यात्राओं के माध्यम से रूपांतरित ऊर्जाओं के नये–नये स्वरूप से रूबरू होता जाता हैं और इन जैविक एवं यौगिक ऊर्जाओं की शक्ति के माध्यम से अपना चेतन स्वरूप भी परिवर्तित कर लेता है। अब नये परिमार्जित स्वरूप में एक अणु के लॉखवें हिस्से के बराबर आकार लिये वह इतना ज्यादा हल्का हो जाता है कि सेकंड के सौंवे हिस्से में हजारों किलोमीटर की दूरी तय कर लेता है । परंतु इस अवस्था को हासिल कर लेने के पश्चात् भी साधक इतना सक्षम नहीं हो पाता है कि वह इस सांसारिक नश्वर शरीर से स्थायी मुक्ति पा सके और इसी मुक्ति की अवस्था की प्राप्ति हेतु उसकी आत्मा को बारम्बार जीवन मरण के चक्र से होकर गुजरना पड़ता है और प्रत्येक चक्र के परिभ्रमण के ऊपरांत उसकी अवस्था उन्नत होती चली जाती है । फिर .... तो उसकी आत्मा को जन्म मरण के चक्र से मुक्ति मिल जाती है । परंतु फिर भी अभी तक उसकी वो अवस्था नहीं आ पाती है कि उसको परम–साक्षात्कार अर्थात मोक्ष की प्राप्ति हो जाये, इसलिये साधक की आत्मा अब सूक्ष्म स्वरूप में ही रहकर अलौकिक चक्रों में विचरण करती रहती है ....

यहाँ की अवस्था सांसारिक चर्याओं से पूर्णतया भिन्न स्वरूप लिये होती है । क्योंकि यहाँ सांसारिक कर्मबंधनों से कोई संबंध नहीं होता है । यहाँ अपनी चेतना के अनुरूप आत्मा अपने आप को परिष्कृत स्वरूप में निरंतर विकसित करती जाती है और ये क्रम अनवरत गतिमान रहता है आत्मा के परम आत्मा के दायरे में प्रवेश करने तक ।

इसके बाद परम शक्ति की अनुकंपा से अद्भूत दिव्य अलौकिक प्रकाशपुंज द्वारा उस आत्म स्वरूप को गति प्रदान की जाती है उसको परम सत्य की अनुभूति का साक्षात्कार कराया जाता है। उसके लक्ष्य का बोध कराया जाता है। उसकी जड़ता यदि किंचित मात्र भी शेष अगर बच रही है तो इस जड़ता को चैतन्य ज्ञान के प्रभाव से समूल नष्ट कर दिया जाता है। ताकि कोई भी, विकार या अवरोध जो कि लक्ष्य प्राप्ति में बाधक हो सकता है । बाकी ना रहें ।

अब तक आत्मा लगभग सभी विकल्प रूपी आयामों से गुजरकर अपनी योग्यता साबित कर देती है । उसकी अवस्था एक लघु शून्य के समान हो जाती है जिसके आंतस्वरूप और बाह्यस्वरूप में कुछ भी शेष नहीं रह जाता है और वह तमाम कसौटी पर खरी उतरने के पश्चात् एक पूर्णतः भिन्न परिष्कृत स्वरूप में आ जाती है । इसके बाद शायद इस सृष्टि की सबसे महत्त्वपूर्ण यौगिक क्रिया की शुरूआत होती है आत्मा के परम आत्मा में विलय के सफ़र की जिसका अक्षरशः वर्णन करने हेतु शायद ही मेरी अल्प बुद्धि का दायरा इतना विस्तृत नहीं है कि हजारों वर्षों के प्रत्यंतर में अवघटित होने वाली इस महानतम प्रक्रिया का, चन्द शब्दों का स्वरूप देकर समेट सकूँ । हो सकता है कि इस प्रक्रिया का साक्षी बनने हेतु मुझे स्वयं ये बोध नहीं है कि मुझे कितना इंतजार.................... करना होगा, शायद कुछ महिनों, फिर कुछ वर्षो या फिर कुछ जन्मों तक .... पता नहीं ये मेरा सफर कब अपनी मंजिल को प्राप्त होगा ? उस दिव्य क्षण की प्रतिक्षा में ....

।। इति सिद्धम् ।।